



ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्म-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)

3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-2.25

Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025

Page No.- 73-83

©2025 Gyanvividha

<https://journal.gyanvividha.com>

Author's :

अंगद कुमार

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय,
मधेपुरा, बिहार.

Corresponding Author :

अंगद कुमार

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय,
मधेपुरा, बिहार.

डॉ. राम मनोहर लोहिया के विचारों के आलोक में भारत में गैर-कांग्रेसवाद और समाजवादी विचारधारा का विकास

सारांश : यह शोध-पत्र स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में डॉ. राम मनोहर लोहिया के दो मौलिक और परस्पर जुड़े योगदानों, उनके देसी समाजवाद (Indian Socialism) और गैर-कांग्रेसवाद (Non-Congressism) के सैद्धांतिक आधार, उद्भव और राजनीतिक विकास का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

लोहिया ने एक ऐसे समाजवादी दर्शन का प्रतिपादन किया जो मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष और पश्चिमी पूंजीवाद के अनियंत्रित विकास, दोनों को भारतीय संदर्भ में अप्रासंगिक मानता था। उन्होंने अपने मौलिक विचार 'सप्त क्रांति' (Sapt Kranti) के माध्यम से सामाजिक न्याय की लड़ाई को केवल आर्थिक असमानता तक सीमित न रखकर जाति (आरक्षण), लिंग (स्त्री-पुरुष समानता), रंगभेद और छोटे-बड़े के भेद जैसी सात मौलिक असमानताओं से लड़ने पर केंद्रित किया। उनका 'चौखंभा राज' का सिद्धांत राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर जोर देता था, ताकि सत्ता समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक पहुँचे।

लोहिया ने तर्क दिया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) का दीर्घकालिक एकाधिकार लोकतंत्र की जीवनीशक्ति को नष्ट कर रहा है और यह भ्रष्टाचार तथा निरंकुशता को जन्म दे रहा है। इस पृष्ठभूमि में, उन्होंने 1960 के दशक के मध्य में 'गैर-कांग्रेसवाद' का आह्वान किया। यह एक राजनीतिक रणनीति थी जिसमें वैचारिक रूप से विरोधी विपक्षी दलों को केवल एक न्यूनतम साझा कार्यक्रम—कांग्रेस को सत्ता से हटाने पर एकजुट होने के लिए प्रेरित किया गया।

यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि लोहिया के विचारों ने 1967 के आम चुनावों में निर्णायक मोड़ लाया, जिसके परिणामस्वरूप

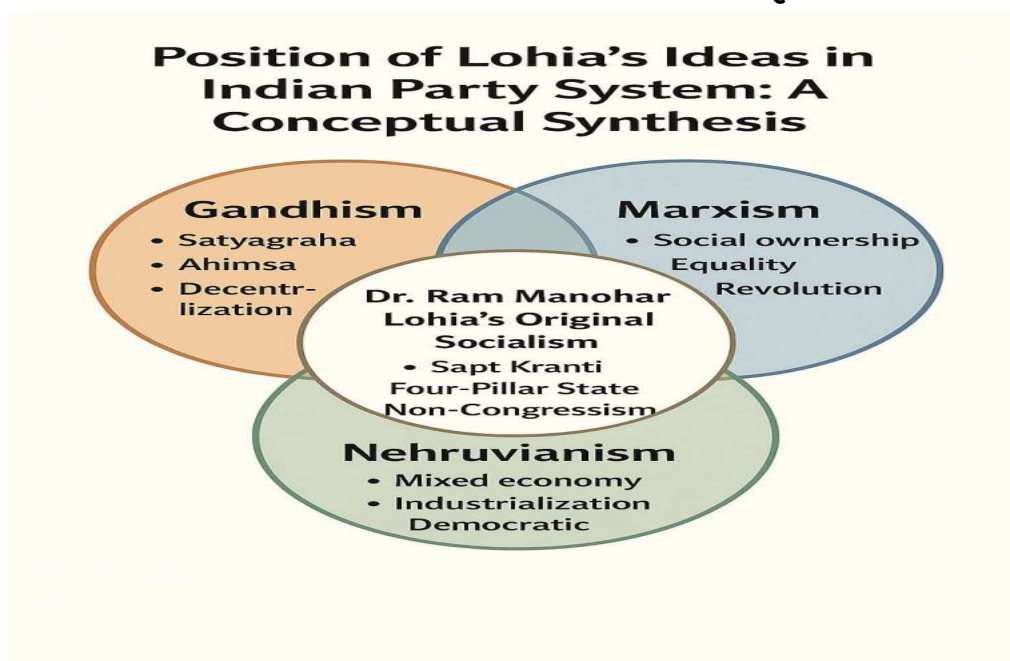
कई राज्यों में पहली बार संयुक्त विधायक दल (संविद) की गठबंधन सरकारें बनीं। यद्यपि लोहिया 1967 में चल बसे, लेकिन उनकी वैचारिक विरासत ने ही 1977 में जनता पार्टी के तहत केंद्र में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार के गठन की नींव रखी। इस प्रकार, लोहिया का चिंतन भारतीय राजनीति के लोकतांत्रिकरण, बहुदलीय व्यवस्था के उदय और सामाजिक न्याय के विमर्श को आकार देने में आधारभूत रहा है।

मुख्य शब्द : डॉ. राम मनोहर लोहिया, गैर-कांग्रेसवाद, समाजवादी विचारधारा, सप्त क्रांति, सामाजिक न्याय, चौखंभा राज, संविद सरकारें, भारतीय दलीय व्यवस्था।

परिचय : भारतीय राजनीति के इतिहास में डॉ. राम मनोहर लोहिया (Dr. Ram Manohar Lohia, 1910-1967) का स्थान एक मौलिक चिंतक और क्रान्तिकारी नेता के रूप में अद्वितीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, जब भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) का वर्चस्व था, जिसे राजनीतिशास्त्री रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस प्रणाली' (The Congress System) की संज्ञा दी, तब लोहिया ने इस दलीय एकाधिकार को लोकतंत्र के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में देखा। लोहिया ने न केवल कांग्रेस की नीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया, बल्कि एक वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक दर्शन और राजनीतिक रणनीति भी प्रस्तुत की। यह शोध-पत्र लोहिया के इन दो आधारभूत विचारों—उनके भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल समाजवादी दर्शन और गैर-कांग्रेसवाद (Non-Congressism) की राजनीतिक रणनीति के उद्भव और भारतीय लोकतंत्र के विकास पर उनके प्रभावों का गहन मूल्यांकन करता है।

लोहिया के विचार कांग्रेस के नेहरूवादी मॉडल के प्रति एक तीखी वैचारिक प्रतिक्रिया थे। उन्होंने बड़े उद्योगों, अंग्रेजी भाषा की प्रधानता और जातीय/लैंगिक असमानताओं की अनदेखी की कांग्रेस की नीतियों की आलोचना की। उनके दर्शन ने भारतीय समाज की विशिष्टताओं, जैसे जाति-प्रथा (Caste System) और पितृसत्ता (Patriarchy), को संबोधित करते हुए एक देसी समाजवादी मार्ग का सूत्रपात किया। उनका गैर-कांग्रेसवाद का नारा केवल एक राजनीतिक चाल नहीं था, बल्कि यह लोकतंत्र में सत्ता के सतत उलट-पलट को अनिवार्य मानने वाले उनके गहरे विश्वास का प्रतीक था। इस प्रकार, लोहिया का चिंतन भारतीय लोकतंत्र के सामाजिक न्याय के विस्तार और सशक्त विपक्षी राजनीति के निर्माण में एक केन्द्रीय भूमिका रखता है।

• भारतीय दलीय प्रणाली में लोहिया के विचारों का स्थान : एक वैचारिक संश्लेषण



यह चित्र डॉ. राम मनोहर लोहिया के "मौलिक समाजवाद" को दर्शाता है, जो गांधीवाद, मार्क्सवाद और नेहरूवाद — इन तीन विचारधाराओं का समन्वय है।

- गांधीवाद से उन्होंने सत्याग्रह, अहिंसा और विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत अपनाए।
- मार्क्सवाद से सामाजिक स्वामित्व, असमानता विरोध और क्रांति की भावना ली।
- नेहरूवाद से मिश्रित अर्थव्यवस्था, औद्योगीकरण और धर्मनिरपेक्षता को जोड़ा।

इस प्रकार लोहिया का समाजवाद भारतीय संदर्भ में एक संश्लेषित और व्यावहारिक विचारधारा के रूप में उभरता है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature) : डॉ. लोहिया के चिंतन पर विपुल साहित्य उपलब्ध है, जिसे तीन मुख्य धाराओं में विभाजित किया जा सकता है:

1. लोहिया का समाजवादी दर्शन और सप्त क्रांति : मस्तराम कपूर (लोहिया के विचार, खंड-X) और इंदुमती केलकर (डॉ. लोहिया और समाजवाद) जैसे विद्वानों ने लोहिया के सप्त क्रांति सिद्धांत और चौखम्बा राज के विचार की व्याख्या की है। इन कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि लोहिया का समाजवाद केवल आर्थिक समानता तक सीमित नहीं था, बल्कि यह जाति, लिंग, रंग और भाषा जैसी असमानताओं के खिलाफ एक समग्र क्रांति का आह्वान था। इस धारा के अध्ययन लोहिया को एक गांधीवादी-मार्क्सवादी संश्लेषण के रूप में देखते हैं। "लोहिया ने गांधीवादी साधनों (सत्याग्रह) को मार्क्सवादी लक्ष्यों (गैर-बराबरी का उन्मूलन) के साथ एकीकृत किया, जिससे उनका समाजवाद एक तीसरा शिविर (Third Camp) बन गया जो पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों से अलग था" (कपूर, लोहिया के विचार, खंड-X, 1970, पृष्ठ 25)। इसके अलावा, "चौखम्बा राज का विचार लोहिया के विकेन्द्रीकरण के आग्रह को दर्शाता है, जहाँ गाँव, जिला, प्रांत और केंद्र—ये चारों सत्ता के परस्पर निर्भर स्तंभ बनते हैं, जो भारतीय राजनीति में सत्ता के केंद्रीकरण के विरुद्ध थे" (केलकर, डॉ. लोहिया और समाजवाद, 1978, पृष्ठ 155)।

2. गैर-कांग्रेसवाद: राजनीतिक रणनीति और प्रभाव : लोहिया की पुस्तक 'गैर-कांग्रेसवाद: क्यों?' (Non-Congressism: Why?) उनकी इस रणनीति का मूल स्रोत है। माइकल ब्रैशर (नेहरू: ए पॉलिटिकल बायोग्राफी) और रजनी कोठारी (पॉलिटिक्स इन इंडिया) जैसे क्लासिक कार्यों में 1967 के चुनावों को "कांग्रेस प्रणाली के क्षरण की शुरुआत" के रूप में देखा गया, जिसके पीछे लोहिया के गैर-कांग्रेसवाद की निर्णायक भूमिका थी। "1967 के चुनावों ने सिद्ध किया कि लोहिया का 'गैर-कांग्रेसवाद' का आह्वान मात्र एक नारा नहीं था, बल्कि यह कांग्रेस पार्टी के अधिनायकवादी होते जाने की आशंका के विरुद्ध लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त थी" (कोठारी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1971, पृष्ठ 318)। इन अध्ययनों के अनुसार, संविद (संयुक्त विधायक दल) सरकारों का गठन विपक्षी दलों के बीच वैचारिक ध्रुवीकरण को पीछे छोड़कर सत्ता के उलट-पलट को प्राथमिकता देने की एक अभूतपूर्व रणनीति थी, जिसने भारतीय राजनीति में गठबंधनों की संस्कृति को जन्म दिया (ब्रैशर, नेहरू: ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, 1969, पृष्ठ 602)।

3. सामाजिक न्याय और आरक्षण : लोहिया ने जाति के आधार पर आरक्षण (Affirmative Action) की वकालत करते हुए नारी, हरिजन, शूद्र, गरीब मुसलमान/ईसाई और आदिवासी के लिए 60% आरक्षित सीटों का नारा दिया। योनिन्दर सिकंद (मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट) जैसे समकालीन लेखकों ने इस पर प्रकाश डाला है कि लोहिया का यह पक्ष नेहरू के आर्थिक विकास-केंद्रित दृष्टिकोण से भिन्न था और इसने भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्गों की राजनीतिक लामबंदी की नींव रखी। "लोहिया का आरक्षण का सिद्धांत 'विशेष सुविधा का सिद्धांत' था, जिसमें उन्होंने सामाजिक रूप से वंचित समूहों को बराबरी पर लाने के लिए सक्रिय उपाय करने की आवश्यकता पर जोर दिया, जो नेहरू की विशुद्ध रूप से आर्थिक योजनाओं से मौलिक रूप से भिन्न था" (सिकंद, मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट, 2004, पृष्ठ 188)। वास्तव में, नारी, हरिजन, और पिछड़े वर्ग को सत्ता में 60% आरक्षण देने का लोहिया का नारा उनके

सप्त क्रांति दर्शन का सबसे व्यावहारिक राजनीतिक अनुप्रयोग था, जिसने जाति के प्रश्न को भारतीय चुनावी राजनीति के केंद्र में ला दिया (सिंह, राम मनोहर लोहिया और समाजवाद, 1987, पृष्ठ 95)।

समय-रेखा के प्रमुख पड़ाव :

वर्ष (Year)	घटना (Event)	प्रभाव/महत्व (Impact/Significance)
1934	कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (CSP) का गठन	- कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारधारा का बीज रोपण। - लोहिया की सक्रिय राजनीतिक भूमिका की शुरुआत। - नेहरूवादी पूंजीवाद के प्रति प्रारंभिक असहमति।
1942	भारत छोड़ो आंदोलन में भूमिका	- भूमिगत रहकर आंदोलन का नेतृत्व। - गांधीवादी सत्याग्रह और क्रांतिकारी कार्रवाई का मिश्रण। - ब्रिटिश राज के खिलाफ निर्णायक संघर्ष में अहम भागीदारी।
1948	कांग्रेस से समाजवादी दलों का अलग होना	- लोहिया और अन्य समाजवादियों द्वारा कांग्रेस की नीतियों से मोहभंग। - भारत में एक स्वतंत्र समाजवादी आंदोलन की नींव। - नेहरू के केंद्रीकृत विकास मॉडल से वैचारिक अलगाव।
1952	प्रथम आम चुनाव (समाजवादी पार्टी की हार)	- स्वतंत्र समाजवादी पार्टी को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। - लोहिया को कांग्रेस के प्रभुत्व का एहसास और विपक्षी एकता की आवश्यकता पर चिंतन की शुरुआत। - चुनावी राजनीति में शुरुआती निराशा।
1955	कोंकण रेलवे सत्याग्रह (मूल्य नियंत्रण पर)	- लोहिया की जनता के सीधे मुद्दों पर संघर्ष की रणनीति। - 'सत्याग्रह' को एक राजनीतिक उपकरण के रूप में प्रयोग, गांधीवादी साधनों का समाजवादी लक्ष्यों के लिए उपयोग। - भ्रष्टाचार और असमानता के खिलाफ आवाज।
1962	लोकसभा चुनाव में हार एवं 'निराशा के कर्तव्य' भाषण	- लोहिया की नेहरू के खिलाफ फूलपुर से हार। - 'गैर-कांग्रेसवाद' के विचार का सैद्धांतिक आधार बना। - सभी विपक्षी दलों से कांग्रेस को हराने के लिए एकजुट होने का आह्वान।
1967	राज्यों में 'संविद' सरकारों का गठन	- गैर-कांग्रेसवाद की रणनीति की पहली बड़ी सफलता। - 9 राज्यों में कांग्रेस की हार, संयुक्त विधायक दल (संविद) की सरकारें बनीं। - भारतीय राजनीति में गठबंधन युग की शुरुआत और कांग्रेस प्रणाली का क्षरण। - लोहिया का निधन (इसी वर्ष)।
1977	केंद्र में पहली गैर-कांग्रेसी 'जनता पार्टी' सरकार	- लोहिया की मृत्यु के बाद भी उनके गैर-कांग्रेसवाद की विरासत का प्रभाव। - आपातकाल के बाद विपक्षी एकता की विजय। - भारतीय लोकतंत्र में सत्ता के पहले बड़े लोकतांत्रिक हस्तांतरण में लोहिया के विचारों का दूरगामी प्रभाव।

शोध के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध-पत्र निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ता है :

1. **लोहिया के समाजवाद का विच्छेदन:** डॉ. लोहिया के समाजवादी दर्शन के मौलिक घटकों (जैसे सप्त क्रांति, चौखंभा राज, और छोटी मशीन प्रौद्योगिकी) का गहन विश्लेषण करना और यह दर्शाना कि यह कैसे भारतीय समाज की संरचनात्मक असमानताओं को संबोधित करता है।

2. **गैर-कांग्रेसवाद की वैचारिक नींव की खोज:** 'गैर-कांग्रेसवाद' की अवधारणा के पीछे के राजनीतिक दर्शन और तर्कों की पड़ताल करना, विशेषकर लोहिया के इस मत की कि यह लोकतंत्र में जवाबदेही (Accountability) स्थापित करने के लिए एक अनिवार्य शर्त थी।
3. **राजनीतिक प्रभाव का मूल्यांकन:** 1967 के विधानसभा चुनावों में हुए कांग्रेस के पतन और राज्यों में संविद (Samyukta Vidhayak Dal) सरकारों के गठन पर गैर-कांग्रेसवाद के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों का मात्रात्मक और गुणात्मक मूल्यांकन करना।
4. **विरासत और प्रासंगिकता:** लोहिया के विचारों की दीर्घकालिक विरासत, विशेषकर 1977 में केंद्र में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार के गठन और भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय आधारित राजनीति के निरंतर विकास पर उनके प्रभावों का आकलन करना।

शोध-प्रश्नावली : उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, शोध-पत्र निम्नलिखित केन्द्रीय प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करेगा :

1. डॉ. लोहिया का 'देसी समाजवाद' पश्चिमी उदारवादी और मार्क्सवादी मॉडलों से किस प्रकार भिन्न था, और उन्होंने सप्त क्रांति के माध्यम से भारतीय सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को कैसे पुनर्निर्भाषित किया?
2. लोहिया ने 'गैर-कांग्रेसवाद' को केवल चुनावी रणनीति न मानकर लोकतंत्र के लिए एक नैतिक और राजनीतिक आवश्यकता क्यों माना?
3. 1967 के आम चुनावों में लोहिया के गैर-कांग्रेसवाद के नारे ने गठबंधन की राजनीति को जन्म देने में क्या निर्णायक भूमिका निभाई, और संविद सरकारों की सफलता/असफलता ने भारतीय दलीय व्यवस्था को कैसे प्रभावित किया?
4. लोहिया की विरासत, विशेष रूप से सामाजिक न्याय (जाति आरक्षण) और सत्ता के विकेन्द्रीकरण (चौखंभा राज) के संदर्भ में, वर्तमान भारतीय राजनीति में कितनी प्रासंगिक बनी हुई है?

लोहिया का मौलिक समाजवाद : विचार और दर्शन : डॉ. राम मनोहर लोहिया का समाजवाद न तो यूरोप से आयातित शुद्ध मार्क्सवाद था और न ही पश्चिमी पूंजीवादी उदारवाद का हल्का संस्करण। यह एक मौलिक दर्शन था जिसे उन्होंने भारतीय समाज की विशिष्ट, बहुआयामी असमानताओं का समाधान करने के लिए गढ़ा था। लोहिया ने इस दर्शन को 'देसी समाजवाद' कहा, जो अधिकार, समानता और विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित था।

मार्क्सवाद, गांधीवाद और लोहिया का "देसी समाजवाद" : लोहिया ने स्वतंत्रता के बाद के विश्व में मार्क्सवाद और पूंजीवाद दोनों की सीमाओं को स्पष्ट रूप से पहचाना। उन्होंने तर्क दिया कि विश्व को दो "शोकग्रस्त" विचारधाराओं—पश्चिमी पूंजीवादी/उदारवादी खेमा और सोवियत/साम्यवादी खेमा—के बीच फँसा दिया गया है। लोहिया के अनुसार, ये दोनों ही खेमे बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण (Mass Scale Industrialization) और केंद्रीकरण (Centralization) पर जोर देते थे, जो तीसरी दुनिया के देशों की समस्याओं (जनसंख्या, पूंजी की कमी, बेरोजगारी) का समाधान नहीं कर सकते थे।

लोहिया ने अपने समाजवाद में गांधीवाद के नैतिक साधन (सत्याग्रह और अहिंसा) और मार्क्सवाद के क्रांतिकारी लक्ष्य (गैर-बराबरी का उन्मूलन) का संश्लेषण किया। उन्होंने उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व के मार्क्सवादी विचार को स्वीकार किया, लेकिन मार्क्स के हिंसक वर्ग संघर्ष को खारिज कर दिया, और इसकी जगह अहिंसक जन-संघर्ष (सत्याग्रह) को प्राथमिकता दी।

लोहिया ने जोर देकर कहा कि भारत में, वर्ग संघर्ष से पहले जाति संघर्ष का समाधान करना आवश्यक है। उन्होंने मार्क्सवाद की आर्थिक नियतिवाद (Economic Determinism) की आलोचना की, यह तर्क देते हुए कि

भारतीय समाज में वर्ग से अधिक जाति असमानता की जड़ है, जिसने आर्थिक शोषण को सदियों तक स्थायी बनाए रखा है।

लोहिया ने स्पष्ट किया था कि उनका समाजवाद किस पर निर्भर करता है : "मेरा समाजवाद एक नई सभ्यता का निर्माण करना चाहता है जो वोट (चुनाव), कुदाल (सृजनात्मक कार्य) और जेल (सत्याग्रह) पर निर्भर करता है।" (लोहिया, लोहिया के विचार, 1963, पृष्ठ 18)

• **सप्त क्रांति का सिद्धांत और सामाजिक न्याय** : लोहिया के समाजवादी दर्शन का केंद्रीय स्तंभ उनका सप्त क्रांति (Sapt Kranti) का सिद्धांत है। यह दर्शन उनके समाजवाद को एक समग्र और बहुआयामी क्रांति का स्वरूप देता है, जो केवल आर्थिक मुक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक बंधनों से भी मुक्ति दिलाता है। उन्होंने सात प्रकार की असमानताओं की पहचान की, जिनसे एक साथ और लगातार लड़ना आवश्यक है:

1. स्त्री-पुरुष की समानता के लिए क्रांति।
2. चमड़ी के रंग पर आधारित असमानता के खिलाफ क्रांति।
3. जाति पर आधारित असमानता और जन्मना पिछड़ी जातियों के पक्ष में क्रांति।
4. औपनिवेशिक दासता के खिलाफ और स्वतंत्र राष्ट्रों की स्वतंत्रता व विश्व सरकार के लिए क्रांति।
5. आर्थिक असमानता के खिलाफ और पूंजी के स्वामित्व के विरुद्ध क्रांति।
6. अन्यायपूर्ण अस्त्रों के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए क्रांति।
7. निजी जीवन पर अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप के खिलाफ और नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए क्रांति।

जाति, आरक्षण और 'पिछड़ा पावे सौ में साठ' का नारा : लोहिया ने विशेष रूप से जातिगत असमानता को भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई माना। उनका मानना था कि समाज के हाशिए पर खड़े लोगों को सक्रिय रूप से मुख्यधारा में लाना ही वास्तविक सामाजिक न्याय है। लोहिया पहले प्रमुख भारतीय नेताओं में से थे जिन्होंने जाति के आधार पर सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) की पुरजोर वकालत की।

उन्होंने एक स्पष्ट सूत्र दिया : "वे (पिछड़े) बराबरी में नहीं आ सकते जब तक उन्हें हर जगह आरक्षण नहीं दिया जाता। बराबरी में लाने के लिए इन्होंने कहा है कि नारी, हरिजन, शूद्र, गरीब मुसलमान व ईसाई तथा आदिवासियों को हर जगह प्रतिशत स्थान मिलना चाहिए।" (केलकर, डॉ. लोहिया और समाजवाद, 1978, पृष्ठ 122)।

उन्होंने 'पिछड़ा पावे सौ में साठ' का नारा दिया, जिसके तहत आरक्षण को न केवल सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं में, बल्कि राजनीतिक सत्ता में भी लागू करने की बात कही गई। यह उनका विशेष सुविधा का सिद्धांत था, जिसके माध्यम से उन्होंने सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को बराबरी पर लाने के लिए विशेष अवसर देने की वकालत की।

चौखंभा राज और आर्थिक विकेंद्रीकरण : लोहिया का समाजवाद केवल सामाजिक क्रांति तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें सत्ता के स्वरूप पर एक मौलिक विचार भी शामिल था—जिसे उन्होंने चौखंभा राज (The Four-Pillar State) कहा।

चौखंभा राज का सिद्धांत : लोहिया ने केंद्रीकृत राज्यसत्ता को अस्वीकार किया, जिसका प्रतिनिधित्व नेहरूवादी मॉडल कर रहा था। उन्होंने सत्ता के बँटवारे के लिए एक नया मॉडल सुझाया:

1. **ग्राम (Village)**: सबसे निचला और आधारभूत स्तंभ।
2. **जिला (District)**: स्थानीय प्रशासन का महत्वपूर्ण केंद्र।
3. **प्रान्त (Province)**: राज्य स्तर।

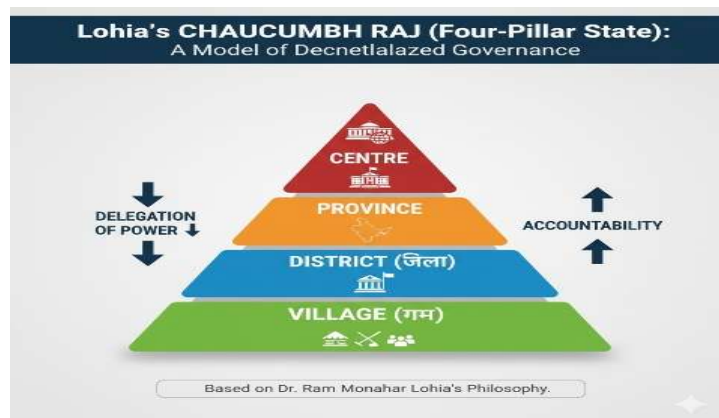
4. केंद्र (Centre): राष्ट्रीय स्तर।

लोहिया ने कल्पना की थी कि इन चारों स्तरों के पास अपने-अपने वित्तीय और विधायी अधिकार होंगे। यह गांधी के 'ग्राम स्वराज्य' के विचार को आधुनिक, लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना में स्थापित करने का प्रयास था। लोहिया मानते थे कि यह विकेंद्रीकरण ही लोकतंत्र की सच्ची शक्ति है, क्योंकि यह जनता को सीधे अपनी समस्याओं को हल करने का अधिकार देता है।

- **छोटी मशीन प्रौद्योगिकी (Small Unit Technology) :** आर्थिक क्षेत्र में, लोहिया बड़े पैमाने के औद्योगीकरण के कटु आलोचक थे, क्योंकि उनका मानना था कि यह भारत में बेरोजगारी बढ़ाता है और पूंजी को कुछ हाथों में केंद्रित करता है। उन्होंने छोटी मशीन प्रौद्योगिकी का समर्थन किया।

उनका तर्क था कि भारत जैसे श्रम-अधिशेष (Labour-surplus) देश के लिए ऐसी तकनीक आवश्यक है जो पूंजी पर कम और मानवीय श्रम पर अधिक निर्भर हो। उन्होंने कहा था : "मैं समृद्धि के ज्यादा से ज्यादा विस्तार का नाम समाजवाद मानता हूँ, न कि गरीबी के समान बँटवारे का। लेकिन बिना समता के समृद्धि असंभव है।" (लोहिया, लोहिया की आर्थिक नीति, 1965, पृष्ठ 58)।

लोहिया ने सादे जीवन की वकालत करते हुए उपभोक्तावाद का विरोध किया। उनका लक्ष्य समानता और समृद्धि का एक साथ विस्तार करना था।



इस डायग्राम में :

- पिरामिड संरचना स्पष्ट रूप से सत्ता के चार स्तरों को दर्शाती है।
- सबसे निचला और चौड़ा स्तर 'VILLAGE (ग्राम)' है, जो सबसे महत्वपूर्ण आधार का प्रतिनिधित्व करता है।
- ऊपर की ओर बढ़ते हुए, 'DISTRICT (जिला)', 'PROVINCE (प्रांत)', और 'CENTRE (केंद्र)' के स्तर हैं, जिनकी चौड़ाई घटती जाती है, जो सत्ता के कम होते केंद्रीकरण को दर्शाती है।

गैर-कांग्रेसवाद: एक राजनीतिक रणनीति का उदय : डॉ. राम मनोहर लोहिया का गैर-कांग्रेसवाद (Non-Congressism) का सिद्धांत उनके समाजवादी दर्शन का एक अभिन्न और व्यावहारिक विस्तार था। यह केवल सत्ता-लोलुपता से उपजा नारा नहीं था, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक अनिवार्य राजनीतिक रणनीति थी। लोहिया ने इस अवधारणा को 1960 के दशक के मध्य में, विशेषकर 1962 के आम चुनावों में कांग्रेस की प्रचंड जीत और विपक्ष की हार के बाद, ज़ोर-शोर से उठाया।

- **गैर-कांग्रेसवाद का सैद्धांतिक आधार :** लोहिया की गैर-कांग्रेसवाद की अवधारणा तीन मुख्य सिद्धांतों पर आधारित थी, जिसने इसे नेहरूवादी राजनीति के प्रति एक मौलिक चुनौती बना दिया।

लोकतंत्र के लिए सत्ता का उलट-पलट : लोहिया का यह दृढ़ विश्वास था कि किसी भी लोकतांत्रिक देश में एक

राजनीतिक दल का लंबे समय तक सत्ता में बने रहना 'लोकतंत्र की मृत्यु' के समान है। सत्ता का दीर्घकालिक केंद्रीकरण अनिवार्य रूप से निरंकुशता (Authoritarianism), भ्रष्टाचार और जनता के प्रति जवाबदेही (Accountability) में कमी लाता है।

लोहिया ने तर्क दिया कि सच्चे लोकतंत्र की जीवनशक्ति "सरकारों के उलट-पलट" में निहित है। कांग्रेस के प्रभुत्व वाले उन दिनों में, उन्होंने असंभव माने जाने वाले सत्ता परिवर्तन को संभव बनाने के लिए विपक्षी एकता को एकमात्र रास्ता माना। "लोकतंत्र का सार, और सच्चा लोकतंत्र, तभी संभव है जब शासक दल का समय-समय पर उलट-पलट होता रहे। कांग्रेस अधिक समय तक सत्ता में रहकर अधिनायकवादी हो गई थी।" (लोहिया, गैर-कांग्रेसवाद: क्यों?, 1964, पृष्ठ 45)

नेहरूवादी नीतियों के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष : लोहिया ने कांग्रेस के शासन को वैचारिक रूप से खोखला और समाजवाद के नाम पर पूंजीवादी-वर्गीय हितों का संरक्षक माना। उन्होंने कांग्रेस की नीतियों की आलोचना की क्योंकि वे :

- गरीब विरोधी: बड़ी परियोजनाओं और भारी उद्योगों पर जोर देती थीं, जिससे बेरोजगारी बढ़ी।
- अलोकतांत्रिक: चौखंबा राज की अनदेखी कर सत्ता को केंद्रीकृत करती थीं।
- सामाजिक रूप से रूढ़िवादी: जाति और लिंग की असमानताओं (सप्त क्रांति के बिंदु) को संबोधित करने में विफल रहती थीं, बल्कि उन्हें बनाए रखती थीं।

अतः, कांग्रेस को सत्ता से हटाना लोहिया के लिए केवल राजनीतिक बदलाव नहीं, बल्कि समाजवादी सिद्धांतों की स्थापना के लिए एक आवश्यक नैतिक कार्य था।

'निराशा के कर्तव्यों' से प्रेरणा : 1962 के लोकसभा चुनावों में, डॉ. लोहिया स्वयं फूलपुर में जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ चुनाव हार गए थे, जबकि समाजवादी पार्टी का प्रदर्शन बहुत निराशाजनक रहा। इस हार के बाद, उन्होंने कार्यकर्ताओं को "निराशा के कर्तव्यों" (The Duties of Despair) पर एक ऐतिहासिक भाषण दिया। इसका सार यह था कि हार के बावजूद, विपक्ष को सत्ताधारी दल की गलत नीतियों के खिलाफ लड़ते रहना चाहिए और लोगों में आशा जगाने के लिए एकजुट होना चाहिए। यह भाषण गैर-कांग्रेसवाद की रणनीति का दार्शनिक आधार बना।

- **'अजीब गठबंधन' की वकालत :** गैर-कांग्रेसवाद की रणनीति की सबसे विवादास्पद विशेषता लोहिया का 'अजीब गठबंधन' (Strange Alliance) का आह्वान था।

व्यापक विपक्षी एकता का आह्वान : लोहिया जानते थे कि कोई भी अकेला गैर-कांग्रेसी दल कांग्रेस के व्यापक संगठन और संसाधनों को चुनौती नहीं दे सकता। इसलिए उन्होंने भारतीय राजनीति में एक नई परंपरा शुरू की: वैचारिक मतभेदों को दरकिनार करते हुए, कांग्रेस को हटाने के न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर सभी विपक्षी दलों को एकजुट करना।

इस आह्वान के तहत, उन्होंने वामपंथी (कम्युनिस्ट), समाजवादी और यहाँ तक कि दक्षिणपंथी (जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी) जैसे वैचारिक रूप से ध्रुवीय दलों को भी एक मंच पर लाने की वकालत की। लोहिया के लिए, प्राथमिक शत्रु कांग्रेस थी, और द्वितीयक शत्रु (विपक्षी दलों के बीच वैचारिक अंतर) को बाद में सुलझाया जा सकता था।

लोहिया का तार्किक आधार : "यह सिद्धांत बहुत सरल है: जहाँ कोई पार्टी बहुसंख्यक हो, वहाँ उसे हराने के लिए सब दलों को एकजुट हो जाना चाहिए। देश को एक विकल्प चाहिए और यह विकल्प तभी खड़ा हो सकता है जब सभी गैर-कांग्रेसी दल एकजुट हों।" (कपूर, लोहिया की राजनीति, 1970, पृष्ठ 110)

संविद सरकारें (Samyukta Vidhayak Dal) : यह रणनीति 1967 के विधानसभा चुनावों में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची। लोहिया ने ही संयुक्त विधायक दल (संविद) की अवधारणा को जन्म दिया। संविद गठबंधन ऐसे मोर्चा थे जो

चुनाव के बाद विभिन्न विचारधाराओं के विधायकों को एकजुट करके कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखने के लिए बनाए गए थे। गैर-कांग्रेसवाद की यह रणनीति भारतीय राजनीति में गठबंधन की राजनीति (Coalition Politics) की शुरुआत थी, जिसने कांग्रेस के प्रभुत्व को स्थायी रूप से तोड़ दिया।

गैर-कांग्रेसवाद का व्यावहारिक प्रभाव और विकास : डॉ. राम मनोहर लोहिया का गैर-कांग्रेसवाद का सिद्धांत केवल एक वैचारिक आह्वान नहीं था, बल्कि भारतीय राजनीति के लिए एक ज्वलंत रणनीतिक खाका था। यह रणनीति 1967 के आम चुनावों में निर्णायक रूप से फलीभूत हुई और इसने भारतीय दलीय व्यवस्था (Indian Party System) को मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया, जिसके प्रभाव दशकों तक महसूस किए गए।

- **1967 के आम चुनाव और 'संविद' सरकारों का गठन :** 1967 के चौथे आम चुनावों को भारतीय राजनीति में एक युग-परिवर्तनकारी घटना (Watershed Event) माना जाता है, जिसे लोहिया के गैर-कांग्रेसवाद के नारे ने उत्प्रेरित किया।

कांग्रेस प्रणाली का क्षरण (Erosion of the Congress System) : 1967 के चुनावों से पहले, कांग्रेस का प्रभुत्व लगभग अटूट था, जिसे रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस प्रणाली' कहा था। इन चुनावों में, कांग्रेस की लोकसभा में सीटें और मत प्रतिशत दोनों में कमी आई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि देश के नौ प्रमुख राज्यों (जैसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, मद्रास और केरल) में कांग्रेस सत्ता से बाहर हो गई। "1967 का चुनाव भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ था, जिसने लोहिया के गैर-कांग्रेसवाद के कारण कांग्रेस प्रणाली के क्षरण की शुरुआत को चिह्नित किया।" (कोठारी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1971, पृष्ठ 315)

संयुक्त विधायक दल (संविद) की सफलता : लोहिया की रणनीति का प्रत्यक्ष परिणाम राज्यों में संयुक्त विधायक दल (Samyukta Vidhayak Dal - SVD) की सरकारों का गठन था। संविद वास्तव में विभिन्न और अक्सर परस्पर विरोधी विचारधाराओं (समाजवादी, जनसंघ, कम्युनिस्ट और क्षेत्रीय दल) के विधायकों का चुनाव-पश्चात गठबंधन था, जिसका एकमात्र उद्देश्य कांग्रेस को सत्ता से दूर रखना था।

उदाहरण के लिए, बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे महत्वपूर्ण राज्यों में, संविद सरकारों में दक्षिणपंथी जनसंघ और वामपंथी कम्युनिस्ट एक ही मंच पर एक न्यूनतम साझा कार्यक्रम (Minimum Common Programme) के आधार पर सत्ता में आए। यह लोहिया के इस मत की व्यावहारिक पुष्टि थी कि मुख्य शत्रु (कांग्रेस का एकाधिकार) को हटाने के लिए अस्थायी एकता आवश्यक है।

- **1977 का परिवर्तन: लोहिया की विरासत :** यद्यपि डॉ. लोहिया का निधन 1967 में हो गया था, लेकिन उनकी गैर-कांग्रेसवाद की विचारधारा ने भारतीय राजनीति में विपक्षी एकता की नींव को मजबूती दी।

गठबंधन की राजनीति की शुरुआत : संविद सरकारों की अल्पकालिक प्रकृति के बावजूद, उन्होंने भारतीय राजनीति में गठबंधन की संस्कृति (Coalition Culture) का सूत्रपात किया। विपक्षी दलों ने यह सीख लिया कि कांग्रेस को केवल एकता के माध्यम से ही पराजित किया जा सकता है। यह अनुभव आगे चलकर जनता पार्टी के गठन का आधार बना।

आपातकाल और विपक्षी एकता का उत्कर्ष : 1975 में लगाए गए राष्ट्रीय आपातकाल ने लोहिया के इस पुराने तर्क को बल दिया कि कांग्रेस का लंबा शासन अधिनायकवाद को जन्म दे सकता है। लोहिया के अनुयायी (जैसे जॉर्ज फर्नांडिस) और उनके समकालीन (जैसे जयप्रकाश नारायण, जो लोहिया के विचारों से गहराई से प्रभावित थे) ने इस आशंका को सही पाया। 1977 में, आपातकाल के बाद हुए चुनावों में, सभी प्रमुख गैर-कांग्रेसी दलों ने एकजुट होकर जनता पार्टी का गठन किया। "1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में केंद्र में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार का गठन लोहिया के गैर-कांग्रेसवाद के सिद्धांत की अंतिम और सबसे बड़ी जीत थी। यह उनकी वैचारिक विरासत का प्रत्यक्ष

परिणाम था।" (सिन्हा, डॉ. लोहिया का चिंतन, 1980, पृष्ठ 210)

यह घटना लोहिया के विचार को भारतीय राजनीति के केंद्र में लाई कि सत्ता का एक ही हाथ में केंद्रित होना देश के लिए विनाशकारी हो सकता है।

• भारतीय दलीय व्यवस्था पर दीर्घकालिक प्रभाव

गैर-कांग्रेसवाद की रणनीति ने भारतीय दलीय व्यवस्था को तीन महत्वपूर्ण तरीकों से स्थायी रूप से प्रभावित किया:

1. **द्विदलीय ध्रुवीकरण की नींव:** लोहिया के बाद, भारतीय राजनीति एक पार्टी के वर्चस्व से हटकर दो ध्रुवों (Two-Pole) के बीच संघर्ष की ओर बढ़ी। एक ध्रुव कांग्रेस के नेतृत्व वाला गठबंधन था, और दूसरा ध्रुव गैर-कांग्रेसी दलों (जो अंततः भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन या अन्य गठबंधनों में विकसित हुए) का था।
2. **सामाजिक न्याय का राजनीतिकरण:** लोहिया द्वारा शुरू किए गए जाति-आधारित सकारात्मक कार्रवाई के विचार को 1970 और 1980 के दशक में उनके अनुयायियों (जैसे मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव) ने आगे बढ़ाया। गैर-कांग्रेसवाद की सफलता ने पिछड़ी जातियों, दलितों और क्षेत्रीय दलों को यह आत्मविश्वास दिया कि वे कांग्रेस की प्रभुत्वशाली राजनीति को चुनौती दे सकते हैं।
3. **क्षेत्रीय दलों का उदय:** गठबंधन की अनिवार्यता ने क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय राजनीति में एक शक्तिशाली मोलभाव करने वाली शक्ति (Bargaining Power) प्रदान की। 1967 के बाद, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ मुखर हुईं और स्थानीय दल राष्ट्रीय राजनीति की दिशा तय करने लगे, जो संघवाद (Federalism) के विकास के लिए महत्वपूर्ण था।

इस प्रकार, गैर-कांग्रेसवाद केवल एक क्षणिक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के लोकतांत्रिकरण, समाजीकरण (Socialization) और विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में एक मौलिक और आवश्यक कदम था।

लोहिया के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता : डॉ. राम मनोहर लोहिया का चिंतन भारतीय राजनीति के लिए एक क्षणिक प्रतिक्रिया नहीं था, बल्कि यह एक शाश्वत वैचारिक ढाँचा था जिसने भारतीय लोकतंत्र की बुनियादी चुनौतियों को संबोधित किया। उनके मौलिक विचार आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं:

सामाजिक न्याय का बहुआयामी दृष्टिकोण : लोहिया ने सप्त क्रांति के माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को केवल आर्थिक असमानता तक सीमित न रखकर जाति (Caste), लिंग (Gender) और भाषा (Language) की असमानताओं से जोड़ा। यह विमर्श आज के भारत में जाति आधारित आरक्षण की राजनीति और लैंगिक समानता के आंदोलनों की वैचारिक नींव है। उनके द्वारा दिया गया 'पिछड़ा पावे सौ में साठ' का नारा आज भी पिछड़े, दलित और महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की माँगों में जीवित है। लोहिया ने ही सामाजिक न्याय को राजनीतिक सत्ता का केंद्रबिंदु बनाया, न कि केवल एक कल्याणकारी कार्यक्रम का हिस्सा।

विकेन्द्रीकरण और स्थानीय शासन : लोहिया का चौखम्बा राज का सिद्धांत, जिसमें ग्राम, जिला, प्रांत और केंद्र में सत्ता के बंटवारे पर जोर दिया गया था, आज के पंचायती राज संस्थानों (Panchayati Raj Institutions) के सशक्तिकरण की आवश्यकता को दर्शाता है। विकेन्द्रीकरण और छोटी मशीन प्रौद्योगिकी पर उनका जोर समकालीन आर्थिक चुनौतियों, जैसे क्षेत्रीय असंतुलन, बेरोजगारी और ग्रामीण पलायन का समाधान करने के लिए एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करता है।

सशक्त विपक्ष और लोकतांत्रिक स्वास्थ्य : लोहिया का गैर-कांग्रेसवाद का नारा आज भारतीय राजनीति में सशक्त और एकजुट विपक्ष की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह विचार आज भी प्रासंगिक है कि किसी एक दल का

अत्यधिक और दीर्घकालिक प्रभुत्व लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। गैर-कांग्रेसवाद ने जो गठबंधन की संस्कृति शुरू की, वह भारतीय दलीय प्रणाली को अधिक समावेशी (Inclusive) और संघीय (Federal) बनाने में सहायक रही है, जहाँ क्षेत्रीय आवाज़ों को राष्ट्रीय मंच पर जगह मिलती है।

निष्कर्ष : यह शोध-पत्र इस बात की पुष्टि करता है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया भारतीय राजनीति में गैर-कांग्रेसवाद के शिल्पी और देसी समाजवाद के मौलिक चिंतक थे।

1. वैचारिक मौलिकता: लोहिया ने गांधीवाद, मार्क्सवाद और नेहरूवाद के तत्वों को संश्लेषित करते हुए एक ऐसा समाजवादी दर्शन दिया जो भारतीय समाज की वास्तविक, बहुस्तरीय असमानताओं—विशेषकर जाति और लिंग—को संबोधित करने में अनूठा था।
2. राजनीतिक परिवर्तन का उत्प्रेरक: लोहिया का गैर-कांग्रेसवाद का नारा केवल एक राजनीतिक चाल नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक जवाबदेही स्थापित करने का एक वैचारिक आह्वान था। इस रणनीति ने 1967 के चुनावों में कांग्रेस प्रणाली के क्षरण को निर्णायक रूप से उत्प्रेरित किया, जिसके कारण संविद सरकारों का उदय हुआ।
3. स्थायी विरासत: 1977 में केंद्र में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार के गठन से लेकर आधुनिक भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्ग की राजनीतिक लामबंदी तक, लोहिया के विचारों का प्रभाव दीर्घकालिक रहा है। उन्होंने भारतीय लोकतंत्र को एक-दलीय प्रभुत्व से हटाकर बहु-दलीय और ध्रुवीकृत व्यवस्था की ओर मोड़ा, जिससे लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा और सामाजिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई।

संक्षेप में, लोहिया का योगदान भारतीय राजनीति को सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक चेतना की दिशा में आगे बढ़ाने वाला एक आधारभूत स्तंभ है, जिसकी प्रासंगिकता भारतीय लोकतंत्र के विकास के साथ और भी गहरी होती जा रही है।

संदर्भ (References) :

1. **कपूर, मस्तराम**, 1970, लोहिया के विचार खंड-X, चिंतन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-25.
2. पुनः, पृष्ठ-110.
3. **केलकर, इंदुमती**, 1978, डॉ. लोहिया और समाजवाद, साहित्य निकेतन, लखनऊ, पृष्ठ-155.
4. पुनः, पृष्ठ-122.
5. **कोठारी, रजनी**, 1971, पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओरिएंट लॉन्गमैन, बॉम्बे, पृष्ठ-315.
6. पुनः, पृष्ठ-318.
7. **ब्रैशर, माइकल**, 1969, नेहरू: ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृष्ठ-602.
8. **लोहिया, डॉ. राम मनोहर**, 1963, लोहिया के विचार खंड-X, नवहिंद प्रकाशन, हैदराबाद, पृष्ठ-18.
9. **लोहिया, डॉ. राम मनोहर**, 1964, गैर-कांग्रेसवाद: क्यों? राममनोहर लोहिया समता न्यास, लखनऊ, पृष्ठ-45.
10. **लोहिया, डॉ. राम मनोहर**, 1965, लोहिया की आर्थिक नीति, नवहिंद प्रकाशन, हैदराबाद, पृष्ठ-58.
11. **सिकंदर, योनिन्दर**, 2004, मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ-188.
12. **सिंह, एस. के.**, 1987, राम मनोहर लोहिया और समाजवाद, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-95.
13. **सिन्हा, रमेश के.**, 1980, डॉ. लोहिया का चिंतन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-210.

•